Chapter-5

# रामचरित मानस में दर्शन

**भुमिका**

''तुलसी के आध्यात्मिक विचारों के अध्ययन में सम्यक् उपयोग अभी तक केवल 'रामचरित मानस' का किया गया है।''[१] तुलसी के मानस में स्थान स्थान पर तत्वदर्शन की मीमांसा की हुई नझर आती है परंतु कवि ने स्वतः स्पष्ट भी किया है कि मै जो कुछ भी कह रहा हूँ, यह मेरा अपना नहीं है परंतु मैंने विविध शास्त्रों पुराणों में से ही दोहन किया है [२]। तुलसीदास भक्त कवि तो थे हि परंतु साथ साथ वे एक सूक्ष्मदर्शी, अनुभवी, विद्वान, निरभिमान और विनीत भी थे ।[३]

'गोस्वामीजी की आध्यात्मिक चिंतनधारा की ओर दृक्पात करने से भी यह तथ्य पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि वह तर्कपूर्ण वाक्यसंघटना मात्र न होकर मानवजीवन के चिरंतन सत्यों को स्पर्श करनेवाली विचार विभूति है ।[४] वे आदर्शभक्त प्रतिभाशील कवि, समन्वयवादी, लोकनायक, दार्शनिक, धर्मप्रचारक एवं समाज सुधारक थे। उनका मुख्य ग्रंथ 'मानस' आज का लक्ष मानसों को सुख-शान्ति एवं सांत्वना प्रदान करता है ।[५]

माताप्रसाद गुप्त के मत से तुलसी का दार्शनिक चिंतन आध्यात्म रामायण पर आधारित है ।[६]

---

१. 'तुलसीदास'- माताप्रसाद गुप्त - पृ. ३७७
२. नानापुराणनिगमागम ... १/७ मंगलाचरण
३. तुलसीदास और उनका काव्य पृ. ७१
४. रामचरित मानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन - पृ. १२६
५. रामचरित मानस - तुलनात्मक अध्ययन - पृ. २२
६. तुलसीदास - पृ. ३७४

प्रथम अध्याय में दर्शन विषयक मूल विषय अर्थात जीव, जगत् ईश्वर और माया के विषय में जो चर्चा की है, इन्हीं विषयों पर तत्वदृष्टि से तुलसी ने मानस में जो विचार प्रकट किये हैं इन्हें हम विस्तार से देखने का प्रयत्न करेंगे ।

**तुलसी के दर्शनानुसार राम सचराचरमें व्याप्त**

मानस के राम परम शक्तिमान परमात्मा है । जीवप्राणी मात्र में और पुरी सृष्टि में वह राम 'जीव' रुप से व्याप्त है,[१] बड़े बड़े सिद्ध पुरुष भी एवं ऋषि मुनि तथा योगी भी उसका ध्यान धरते हैं ।[२] वे परमेश्वर और परात्पर ब्रह्म है ।[३] पुराण प्रसिद्ध परम पुरुष और परमानंद स्वरुप है । वही राम विश्व की समस्त चेतनाका मूल होकर सचराचर के स्वामी हैं ।[४]

मुनि धर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं ।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ।
सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति मायाधनी ।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी ॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना । परमानंद परेस पुराना ।
पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नायउ माथ ॥
विषय करन सुर जीव समेता । सकल एक तें एक सचेता ।
सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ।
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीसग्यान गुन धामू ॥

---

१. रामचरित मानस १/७-१/८
२. उपरीवत् १/५१, ३. १/११६, ४. १/११७

**सिच्चिदानंद राम**

'मानस' के राम सत् चित् और आनंद स्वरुप तथा निर्गुण ब्रह्म है जिसका आदि और अंत कोई भी नहीं जान पाया है वैसे निर्गुण ब्रह्म को वेदों नें अपनी मति अनुसार इन्द्रियातीत बताये हैं –

एक अनीह अरुप अनामा ।
अज सच्चिदानंद परधामा ।
ब्यापक बिस्वरुप भगवाना ।
तेहिं धरि-देह चरित कृत नाना [1]।

आदि अंत कोउ जासु न पावा [2]।
मति अनुमानि निगम अस गावा ।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना ।
आनन रहित सकल रस भोगी ।
बिनु बानी बकता बड जोगी ।
तन बिनु परस नयन बिनु देख ।
ग्रहेहिं घ्रान बिनु बास असेखा ।
असि सब भांति अलौकिक करनी ।
महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ।

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान[3]
सोइ दशरथ सुत भगतहित कोसलपति भगवान ।

---

१. रामचरित मानस १/१३

२. उपरीवत् १/२१८

३. उपरीवत् १/२१८

## भक्तहित निर्गुण ही सगुण और सगुण ही निर्गुण

ऋषि मुनि जिसका ध्यान धरते हैं और वेद जिसकी महिमा गाते हैं वैसे प्रभु कि शिव स्वयं भी जिसकी महिमा का पार नहीं पा सकते हैं वे भक्त के प्रेम के वश होकर विविध अवतार धारण करते है । मनु शतरुपाने ब्रह्म राम को तपश्चर्या से प्रसन्न करके पुत्र रूप में प्राप्त किया ।[1] 'मानस' के अनुसार ब्रह्मराम मनु-शतरुपा को वर देने के लिये प्रगट हुए तभी धनुर्धारी राम (सगुण) बनकर प्रकट हुए[2] और वचन के अनुसार मनु-शरारुपा दशरथ कौशल्या के रुप में अवध में राज्य भुगत रहे थे तभी भी वही ब्रह्म राम नाम धारण करके अवध में अवतरित हुए ।

करहिं अहार साक फल कंदा । सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा ।
पुनि हरि हेतु करन तप लागे । बारि अधार मूल फल त्यागे ।
उर अभिलाष निरंतर होई । देखिअ नयन परम प्रभु सोई ।
अगुन अखंड अनंत अनादी । जेहि चिंतहिं परमारथवादी ।
नेति नेति जेहि बेद निरुपा । निजानंद निरुपाधि अनूपा ।
संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना । उपजहिं जासु अंस ते नाना ।
एसे हु प्रभु सेवक बस अहई । भगत हेतु लीला तनु गहई ।
जौं यह बचन सत्य श्रृति भाषा । तै हमार पूजिहि अभिलाषा [1]।
धरि कर सुभग भुज दंडा । कटि निषंग कर सर कोदंडा [2]।
ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण बिगत बिनोद [3]।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ।

---

१. रामचरित मानस १/१४४

२. २/१४७

३. १/१९८

ब्रह्म राम भक्त के हृदय को सुख देने के लिए ही अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हैं । विदेह जनक इस ब्रह्म राम को भलिभांति पहचान सके हैं और विवाह के बाद राम को बिदा देते समय मानों स्तुति ही कर रहें । निषादराज को अज्ञानवश श्री राम का स्वरुप जब समझ में नहीं आता है तभी भी लक्ष्मण उपदेशमुक्त वचनों से ब्रह्मराम का परिचय कराते हैं ।

व्यापक अकल अनीह अज निर्गुण नाम न रुप ।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप [१]।।

राम करौं केहि भांति प्रशंसा ।
मुनि महेस मन मानस हंसा ।
करहिं जोग जोगी जेहि लागी ।
कोहु मोहु ममता मदु त्यागी ।
ब्यापकु ब्रह्म अलखु अबिनासी ।
चिदानंदु निरगुन गुन रासी ।
मन समेत जेहि जान न बानी ।
तरकि न सकटिं सकल अनुमानी ।
महिमा निगम नेति कहि कहई ।
जो तिहुँ काल एकरस अहई [२]।

राम ब्रह्म परमारथ रुपा ।
अबिगत अलख अनादि अनूपा ।
सकल बिकर रहित मत भेदा ।
कहि नित नेति निरुपहिं बेदा [३]।

---

१. रामचरित मानस १/२०५

२. उपरीवत् १/३४१

३. उपरीवत् २/९३

वाल्मीकि जैसे ऋषि भी सगुण राम का परिचय असल तो निर्गुणब्रह्म के रुप में ही देते हैं और राम को चिदानंद का रुप कहते हैं । केवल वाल्मीकि जैसे ऋषि और लक्ष्मण जैसे योगी अथवा जनक जैसे विदेही ही नहीं परंतु जामवंत जैसे भालु कपि भी राम को ब्रह्म रुप में ही स्वीकार करते हैं और रावण विभीषण संवाद में विभिषण दानव होते हुए भी रावण को समाधान के लिए समझाता हुआ श्री राम के ब्रह्मस्वरुप का और सामर्थ्य का विश्वास के साथ वर्णन करता है ।

राम सरुप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर ।
अबिगत अलख अपार नेति नेति निगम कह... ॥

चिदानंद मय देह तुम्हारी ।
बिंग बिकार जान अधिकारी ।
नर तनु धरहु संत सुरकाजा ।
करहु कहहु जस प्राकृत राजा [१]॥

तात राम कहं नर जनि मानहू ।
निर्गुण ब्रह्म अजित अज जानहु [२]।

तात राम नहीं नर भूपाला ।
भूवनेस्वर कालहु करकाल ।
ब्रह्मअनामय अज भगवंता ।
व्यापक अजित अनादि अनंता ।
गो द्विज धेनु देव हितकारी ।
कृपा सिंधु मानुष तनु धारी [३]।

---

१. रामचरित मानस २/१२६-१२७

२. उपरीवत् ४/२६

३. उपरीवत् ५/२९

रावणवध के पश्चात् देवगण स्तुति करते हुए श्री राम के निर्गुण ब्रह्मत्व का वर्णन करते हैं और काकभुसुंडि के पास गरुड जी जब कथा श्रवण करने को आते हैं तब श्रीराम का परिचय गरुड़ को कराने हेतु काकभुसुंडि भी निर्गुण ब्रह्म के स्वरुप पर ही बल देते हैं ।

तुम्ह सम रुप ब्रह्म अबिनासी ।
सदा एक रस सहज उदासी ।
अकल अगुन अज अनघ अनामय ।
अजि अमोघ सक्ति करुनामय [1]।

सोई सच्चिदानंद घन रामा ।
अज बिग्यान रुप बल धामा ।
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता ।
अगुन-अदभ्र गिरा गोतीता ।
सबदरसी अनबध अजीता ।
निर्मल निराकार निरमोहा ।
नित्य निरंजन सुख संदोहा ।
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी ।
ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ।
भगत हेतु भगवान प्रभु राम घरेउ तनु भूप ।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरुप [2]।

---

१. रामचरित मानस ६/११०

२. उपरीवत् ७/७२

तुलसी के मत से श्रीराम समस्त सृष्टि चेतना के मूलस्रोत गुणों के धाम और परमज्ञान स्वरुप है । सारे विश्व को चेतनावान बनाये रखने के कारण ब्रह्मराम को निर्गुण होते हुए भी गुणों का धाम कहा है । और इस परम और निर्विवाद सत्य के कारण ही सुतीक्ष्ण जैसे बुद्धिमान संत 'निर्गुण-सगुण' उभय नाम से संबोधन करते हैं । सामीप्य मुक्ति प्राप्त करने के बाद जटायु भी श्री राम की स्तुति करता हुआ 'निर्गुण' संबोधन करने के बाद भी 'सगुण' तथा गुणों की प्रेरणा देने वाले कहते हैं ।

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान गुन धामू ।[१]

चिंदानंद निरगुन गुनरासी ।[२]

निर्गुण सगुण बिषम सम रुप ।[३]

जय राम रुप अनूप निर्गुण सगुन गुन प्रेरक सही ।[४]

---

१. रामचरित मानस १/११७

२. उपरीवत् १/३४१

३. उपरीवत् ३/११

४. उपरीवत् ३/३२

सीता शोध के समय वानरसमूह थक जाता है और अंगद निराश हो जाता है तब अंगद को श्रीराम के सामर्थ्य का बोध कराते हुए जामवंत भी राम के लिये 'सगुण' 'निर्गुण' दोनों शब्दों का प्रयोग करते हैं । रामराज्याभिषेक के अनंतर उत्तरकांड में वेद राम की स्तुति करते समय सगुन-निर्गुण दोनों शब्दों का साथ साथ प्रयोग करते हैं । और ब्रह्मपुत्र सनकादि भी राम को गुणों के सागर कहते हुए भी निर्गुण रूप में स्वीकार करते हैं ।

तात राम कहुँ नर जनि जानहु [1]।
निर्गुण ब्रह्म अजित अज मानहु ।
हम सेवक सब अति बडभागी ।
संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी ।

निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ महि गो द्विज हित लागि ।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि ॥
जय सगुन निर्गुन रुप रुप अनूप भूप सिरोमने... ।
जे ब्रह्म अजमद्वैत अनुभवगम्य मन पर ध्यावही ।
ते कहउं जानहुँ नाथ हम तब सगुन जस नित गावहीं [2]।

जय निर्गुन जय जय गुनसागर ।[3]

---

१. रामचरित मानस ४/२६

२. उपरीवत् ७/१३

३. उपरीवत् ७/३४

**सगुण निर्गुण में अभेद्य**

उपर के विविध कांड और विविध पात्रों द्वारा राम की स्तुति प्रशंसा और वर्णन के आधार पर हम कह सकते हैं कि सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है । यही बात तुलसी बताते हुए कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म भक्त के प्रेम के वश होकर सगुण स्वरुप धारण करता है ।

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा ।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ।
अगुन अरुप अलख अज जोई ।
भगत प्रेम बस सगुन से होई ।
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे ।
जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे [१]।

**राम की मनुष्यलीला में माया का आश्रय ।**

अर्थात् निर्गुण ब्रह्म को जब अवतार लेकर विविध कर्म करने होते हैं तब वह माया का आश्रय करके पृथ्वी पर आते हैं । माया के सहकार से मनुष्यरुप धारण करके प्रभु धर्म की रक्षा करते हैं ।

माया मानुषरुपिणौ रघुवरौ ।

सद्धर्मवर्मौ हितौ ।[२]

---

१. रामचरित मानस १/११६

२. उपरीवत् १-मंगलाचरण

## निर्गुण की अपेक्षा सगुण स्वरुप गूढ़

सगुण ब्रह्म श्री राम का चरित्र रहस्यमय अर्थात् समझने में कठिन है, जो पूर्ण रूप से ज्ञान होना आसान नहीं । क्योंकि वह बुद्धि, बल और वाणी से पर है ।

चरित राम के सगुन भवानी ।
तर्कि न जाहिं बुद्धिबल बानी [1]।

अरण्यकांड में भी सगुण राम के चरित्र को शिवजी पार्वतीजी को सुनाते हुए कहते है कि हे उमा ! राम के गुण तो गूढ़ है । पंडित और मुनि अर्थात् बुध्धिमान लोग तो इसे समझ सकते हैं परंतु मूर्खों को सगुण चरित्र को सुनकर संशय होता है ।

उमा राम गुन गूढ़ पंडित उनि पावहिं बिरति ।
पावहि मोर बिमुढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति [2]।

सगुण रुप से सरल निर्गुण रुप है जो समझने में सरल है, परंतु सगुन स्वरुप के अर्थघटन में अच्छे अच्छे लोग भी धोखा खा सकते हैं ।

निर्गुन रुप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होई [3]।

---

१. रामचरित मानस ६/७४

२. उपरीवत् ३/१ (आरंभ)

३. उपरीवत् ७/७३

राम की सगुण लीला को देखकर और सुनकर बुद्धिमान को आनंद प्राप्त होता है और विरक्ति की प्राप्ति होती है परंतु मूढ़ मनुष्य इस चरित्र को देखकर संशयमुक्त मन से मोहमुग्ध हो जाता है ।

हाँ, श्रीराम को मोह कभी भी व्याप्त नहीं हो सकता क्योंकि वे स्वयं विज्ञान–स्वरुप, सच्चिदानंद स्वरुप और स्वयं ज्ञान स्वरुप है ।

गिरजा सुनहु राम कै लीला ।
सुर हित दनुज बिमोहन सीला [१]।

राम देखि मुनि चरित तुम्हारे ।
जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे [२]।

असि रघुपति लीला उरगारी ।
दनुज बिमोहनि जन सुखकारी [३]।

जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा ।
तेहि किमि करिअ बिमोह प्रसंगा ।
राम सच्चिदानंद दिनेसा ।
नहि तहँ मोह निसा लवलेसा ।
सहज प्रकास रुप भगवाना ।
नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना [४]।

---

१. रामचरित मानस १/११३, २. २/१२७

३. उपरीवत् ७/७३, ४. १/११६

## सगुणराम विषयक मोह का कारण ज्ञान

सगुण ब्रह्म राम के विषय में कभी-कभी उसका चरित्र देखकर संशय होता है, मानस की कुछ कथाएँ (जैसे कि - सीता की शोध में श्री राम का रोना, सीता विरहमें वर्षाकी घनगर्जना सुनकर डरना, रणमैदान में नागपॉस से बंध जाना आदि) सुनकर राम विषयक कुछ गलत धारणाएँ हमारे मनमें आकार लेती है परंतु वह सभी धारणाएँ हमारे अज्ञान के कारण ही हैं । हमारी ही मोहयुक्त दृष्टि से हम राम को सही रुप में नहीं समझ पाते हैं । मलिन मति के आवरण के कारण हम प्रभु के चरित्र में भी संशय करते हैं ।

निज भ्रम नहिं समुझहिं अज्ञानी । प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी ।
जथा गगन धन पटल निहारीं । झांपेउ भानु कहहिं कुबिचारी ।
चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ । प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ ।
उमा राम विषइक अस मोहा । नभ तम धूर धूरि जिमि सोहा [1]।

जे मति मलिन विषय बस कामी । प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी ।
नयन दोष जाकहँ जब होई । पीत बरन ससि कहुँ कह कोई ।
जब जेहि दिसिभ्रम होइ खगेसा । सो कह पच्छिम उवउ दिनेसा ।
नौकारुढ़ चलत जग देखा । अचल मोह बस आपुहि लेखा ।
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहाही । कहहिं परसपर मिथ्यावादी ।
हरि बिषइक अस मोह बिहंगा । सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसंगा ।
मायाबस मतिमंद अभागी । हृदयँ जवनिका बहु बिधि लागी ।
तेँसठ हठ बस संसय करहीं । निज अज्ञान राम पर धरहीं ।

काम क्रोध मद लोभरत गृहासक्त दु:ख रुप ।
ते किमि जानहिंरघुपतिहिं मूढ़ परे तम कूप ॥[2]

---

१. रामचरित मानस १/११७

२. उपरीवत् ७/७३

तुलसी के मत से श्री राम की सगुण लीलाएँ केवल लीलामात्र ही हैं अर्थात् वे नाटक में केवल पात्र की भूमिका होती है, भूमिका अदा करनेवाला वह पात्र हो नहीं जाता। इसी प्रकार मनुष्यलीला करने से राम कोई स्वाभाविक मनुष्य नहीं बन जाते। परंतु अज्ञानी लोग इस लीला को न समझकर मोह में फँस जाते हैं। वे तो सदैव ही अपनी सृष्टि से भी पर है –

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोई।
सोई सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ।
असि रघुमति लीला उरगारी।
दनुज बिमोहनि जन सुखकारी [1]।

**विष्णु अवतार श्री राम**

आगे हमने देख लिया कि श्री राम सर्वनियंता सर्वअंतर्यामी और सर्वशक्तिमान हैं और वे विविध अवतार लेकर पृथ्वी पर आते हैं। मानस के अनुसार राम विष्णु के अवतार हैं। सनकादि द्वारा लगे हुए शाप से अपने द्वारपालों को मुक्त करने के लिए वे रामनाम धारण करके पृथ्वी पर आये हैं –

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ
जय अरु बिजय जान सब कोऊ।
बिप्र साप तें दूनउ भाई।
तामस असुर देह तिन्ह पाई।
भये निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान।
कुंभकरन रावन प्रगट सुर बिजई जग जान।
एक बार तिन्ह के हित लागी।
धरेउ सरीर भगत अनुरागी [2]।

---

१. रामचरित मानस ७/७२-७३

२. उपरीवत् १/१२२-१२३

देवताओं को त्रस्त करनेवाले जलंधर के वध के लिए उसकी स्त्री वृंदा का पातिव्रत्यधर्म खंडन कराना अनिवार्य था और समर्थ विष्णुने देवताओं के हित के लिए एसा किया । बाद में कपटवश धर्मखंडिता वृंदाने विष्णु को शाप दे दिया और जलंधर रावण बनकर उत्पन्न हुआ तथा रावण के वध हेतु वृंदा के शाप वश विष्णु को रामावतार धारण करना पड़ा –

छल करि टरेउ तासु व्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह ।
जब तेहिं जानेउ मरम तब, श्राप कोप करि दीन्ह ।

तासु श्राप हरि दीन्ह प्रनामा ।
कौतूक निधि कृपाल भगवाना ।
तहाँ जलंधर रावन भएऊ ।
रन हति राम परम पद दएऊ [१]।

मानस के 'नारद-मोह' प्रकरण में भी विष्णु को नारद का शाप लगता है और विष्णुराम होकर पृथ्वी पर आकर मनुष्यलीला करते हुए शाप भुगत रहे हैं । सीता हरण के पश्चात् राम-नारद मिलाप प्रसंग में सारी घटना का शंका-समाधान होता है ।

राम जबहिं प्रेरेउ निज माया ।
मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ।
तब बिवाह मैं चाहउँ कीन्हा ।
प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा [२]।

---

१. रामचरित मानस १/१२३

२. उपरीवत् ३/४३

अयोध्याकांड में चित्रकूट का प्रकृति वर्णन करते हुए तुलसी विष्णु अवतार राम का उल्लेख करते हुए कहते है कि 'जहां श्री राम बस रहे हैं एसे चित्रकूट की सुंदरता असीम है । क्यों नहीं होंगी ? क्योंकि स्वयं विष्णु रामरुप धारण करके क्षीरसागर का सुख छोड़कर चित्रकूट पर पधारे हैं ।

सो बनु सैलु सुभार्य सुहावन ।
मंगलमय अति पावन पावन ।
महिमा कहिअ कवनि बिधि तासू ।
सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू ।
पय पयोधि तजि अवध बिहाई ।
जहं सिय लखनु राम रहे आई [१]।

अरण्यकांड में अत्रिमुनि श्री राम की स्तुति करते हुए इंदिरा पति शब्द प्रयोग करके राम को विष्णु के अवतार सिध्ध करते हैं ।[२]

नमामि इंदिरापति । सुखाकरं सतांगति ।[२]

सुतीक्ष्ण को भी आरंभ में तो राम शंख चक्र गदा पद्म धारी चतुर्भुज विष्णु के रुप में ही दर्शन देते है ।

भूप रुप तब राम दुरावा ।
हृदयँ चतुर्भुज रुप दिखावा [३]।

---

१. रामचरित मानस १/१३९

२. उपरीवत् ३/४

३. उपरीवत् ३/१०

तुलसी श्रीराम को रामानिवास संबोधन भी करते हैं । राज्याभिषेक के प्रसंग सब माताएँ सीताराम को लक्ष्मी और विष्णु के अवतार के समान देखकर प्रसन्न होकर स्वयं को बड़भागी समझती है राज्याभिषेक के अवसर पर शिव राम की स्तुति विष्णु के अवतार मानकर करते हैं। अयोध्या के सुख वैभव का वर्णन करने में तुलसी अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं क्योंकि वहां के राजा स्वयं विष्णु और रानी स्वयं लक्ष्मी है ।

एवमस्तु कहि रामानिवासा ।
हरषि चले कुंभज रिषि पासा [१]।

राम बाम दिसि सोभित रमा रुप गुन खानि ।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सूफल निज जानि [२]।

जय राम रमा रमनं समनं ।...
अवधेस सुरेस रमेस विभो ।...
प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं ।...
बार बार बर माँगउँ हरषि देहू श्रीरंग ।
पद सेराज आनपायनी भगति सदा सतसंग [3]।

जहँ भूप रमानिवास तहँ को संपदा किमि गाइए ।[४]

---

१. रामचरित मानस ३/१२
२. उपरीवत् ७/११
३. उपरीवत् ७/१४
४. उपरीवत् ७/२८

राम से वरदान प्राप्त होने की बात का उल्लेख करते हुए काकभुसुंडि भी श्री राम को विष्णु रुप ही मानते हैं –

सुनि सप्रेम मन बानी देखि दीन निज दास ।

बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास [१]।

**परब्रह्म विष्णु**

विष्णु परमेश्वर है, ब्रह्म है, वैकुंठवासी तथा क्षीर सागर में शयन करनेवाले है । एकबार राक्षसों से भयभीत पृथ्वी, ब्रह्म, शिव और ऋषि, मुनि आदि वैकुंठ में प्रभु से शिकायत करने के लिये जाते हैं, परंतु वैकुंठ में प्रभु नहीं है, तब देवता और पृथ्वी के चिंतित होने पर शिवजी आश्वासन देते हुए कहते हैं कि हरि अर्थात् विष्णु तो सर्वव्यापी है । जव पृथ्वी का भार उतारने हेतु प्रभु को स्तुति करने की संमति शिव की ओर से मिलती है तब ब्रह्मादि जो स्तुति करते है इसमें विष्णु को सर्वव्यापी, परमानंद स्वरुप और लक्ष्मीपति बनाये हैं–

हरिव्यापक सर्वत्र समाना ।
प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना [२]।

जय जय अबिनासी सब घटवासी,
ब्यापक परमानंदा ।
गो द्वीज हितकारी जय असुरारी,
सिंधु सुता प्रियकंता [३]।

---

१. रामचरित मानस ७/९३

२. उपरीवत् १/८५

३. उपरीवत् १/८६

देवताओं द्वारा की गई स्तुति से प्रसन्न होकर प्रभु आकाशवाणी द्वारा अवध में दशरथ कौशल्या के यहां प्रकट होने का वर देते हैं इनमें भी विष्णु के अवतार के पूर्वोक्त दो कारण स्पष्ट हो जाते हैं –

श्री राम के प्रागट्य के समय माता कौशल्या प्रभु के चतुर्भुज स्वरूप की जो स्तुति करती है इनमें माया द्वारा समस्त ब्रह्मांड को धारण करनेवाले कहकर विष्णु अवतार का मंडन किया है ।

रावणवध के पश्चात् ब्रह्मा द्वारा की गई राम की स्तुति से भी विष्णु का ब्रह्म के साथ तादात्म्य स्थापित होता है –

कस्यप अदिति महातप कीन्हा ।
तिन कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा ।
ते दशरथ कौसल्या रूपा ।
कोसलपुरी प्रगट नर भूपा ।
तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई ।
रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई ।
नारद बचन सत्य सब करिहउँ ।
परमसक्ति समेत अवतरिहउँ ।
हरिअउँ सकल भूमि गरुआई ।
निर्भय होहु देव समुदाई [१]।

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रतिवेद कहे ।[२]

छबिधाम नमामि रमा सहितं ।
सुखमंदिर सुंदर, श्रीरमनं [३]।

---

१. रामचरित मानस १/८७

२. उपरीवत् १/१९२

३. उपरीवत् ६/१११

## ब्रह्म-राम-विष्णु तीनों में अभेद्य

इसी स्तुति में निर्गुण ब्रह्म के लक्षणों का वर्णन करके विष्णु का ब्रह्मत्व सिद्ध किया है । सनकादिक भी श्री राम की स्तुति करते हुए अपनी स्तुति में 'निर्गुण' 'सगुण' और 'इंदिरारमन' शब्दों का प्रयोग करके ब्रह्म, राम और विष्णु तीनों का अभेद्य स्थापित किया है ।

अज व्यापकमेकमनादि सदा ।
करुनाकर राम नमामि मुदा [1]।

जय भगवंत अनंत अनामय ।
अनघ अनेक एक करुनामय ।
जय निर्गुण जय जय गुनसागर ।
सुख मंदिर सुंदर अति नागर ।
जय इंदिरारमन जय भूधर ।
अनुपम अज अनादि सोभाकर ।
ज्ञान निधान अमान मानप्रद ।
पावन सुजस पुरान बेद बद ।
तग्य कृतग्य अग्यता भवन ।
नाम अनेक अनाम निरंजन ।
सब सबगत सर्ब उरालय ।
वससि सदा हम कहुँ परिपालय [2]।

---

१. रामचरित मानस ६/१११

२. उपरीवत् ७/३४

## राम विष्णु से भी श्रेष्ठ

मानस में कुछ स्थानों पर विष्णु को राम और राम को ही विष्णु कहा गया है परंतु कुछ स्थानों पर राम ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों से पर है ।

ब्रह्म विष्णु महेश भी राम को वंदन करते हैं और उनके चरणों की सेवा करते हैं । बालकांड में श्री राम के ब्रह्मत्व पर शक्ति सती जब प्रभु की परीक्षा लेने को जाति है तब इस प्रकार का द्दश्य देखकर स्तब्ध हो जाति है ।

तुलसी के अनुसार मनु-सतरुपा भी राम रुप के ही उपासक है और उनकी घोर साधनाके अन्तर भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश उन्हें वर मांगने के लिये लुभा नहीं सकते हैं परंतु जब श्रीराम प्रकट होते हैं कि जिनकी चरणों की पूजा ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों करते हैं और जिनके अंशमात्र से अनेक विष्णु प्राप्त होते हैं, तब मनु सतरुपा वर मांगने को तत्पर होते हैं । शतरुपा और फिर वे राम को अपने पुत्र के रुप में प्राप्त करने का अलभ्य वर मांगते हैं।

देखे सिव बिधि विष्णु अनेका । अमित प्रभाव एक ते एका ।
वंदत चरन करन प्रभु सेवा । बिबिध रुप देख सब देवा [१]।

बिधि हरिहर तब देखि अपारा । मनु समीप आए बहु बारा ।
माँगहु बर बहु भांति लोभाए । परम धीर नहिं चलहिं चलाए [२]।

सुनु सेवक सुसरु सुरधेनू [३]।

बिधि हरिहर बंदित पद रेनू ।
संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना ।
उपजहिं जासु अंस ते नाना ।
एसेउ प्रभु सेवक बस अहई ।
भगत हेनु लीला तनु हाहई ।

जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा ।
तौ हमार पुजहि अभिलाषा [४]।

---

१. रामचरित मानस १/५४, २. १/४५, ३. १/४६, ४. १/४४

मानस के अनुसार जब राम के विवाह संपन्न होत है तब विवाह में विष्णु भी जनक पुर पहुँचने है और राम के मनमोहक स्वरूप पर मुग्ध हो जाते हैं। अन्य देवताओं के साथ विष्णु विप्रवेश लेकर विवाह में सम्मिलित भी हुए हैं।

हरि हित सहित रामु जब सोहे । रमा समेत रमापति मोहे [1]।
बिधि हरि हस दिसिपति दिनराऊ । जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ ।
कपट बिप्रवर बेपु बनाए । कौतुक देखहिं अति सुख याए [2]।

मानस के राम ब्रह्मा, विष्णु और विष्णु को भी नचानेवाले हैं । अर्थात् श्री राम की माया से प्रभावित हो जाने वाले हैं । और वे भी राम की लीलाओं का रहस्य जानने को समर्थ नहीं है । अयोध्याकांड में वाल्मीकि राम की स्तुति करते हुए इस बात को स्पष्ट करते हैं । स्वतः राम कहते हैं कि सचे विष्णुत्व प्राप्त करने पर भी नर्वित या मदान्ध नहीं होते भरत के विषय में चित्रकूट पर श्रीराम लक्ष्मण को इस बात बता रहे हैं । भरत का मतिभ्रम कराने के दुराशय से देवगण जब सरस्वति के पास जाते हैं तब यह स्पष्ट कहती है कि मेरी बात को छोडो, परंतु ब्रह्मा विष्णु, महेश की माया भी भरत की मनि को भ्रमित नहीं कर सकती ।

जग देखन तुम्ह देख निहारे ।[3] बिधि हरि संभु नचावनि हारे ।
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा । और तुम्हहिं को जाननहारा ।

भरतहि होहि न राजमयु बिधि हरि हर पद पाई [4]।
कबहुँ कि कांकी सीफरनि क्षीर सिंधु बिनसाई ।

बिधि हरि हरमाया बहि भारी ।
सोउ न भरत मति सफइ निहारी ।
सो मति गोहिं कहन करु भोरी ।
चदिनि कर कि चंडकर चोरी [5]।

---

१. रामचरित मानस १/३१७, २. १/३२१, ३. २/१२७
४. २/२३१, ५. २/२९५

राम की शक्ति से ब्रह्मा, विष्णु, महेश सृष्टि का सृपन, पालन और संहार कर सकते हैं। सुंदरकांड में अशोक वाटिका उज़ाड़नेवाले हनुमान को जब रावण की सभा में लाये जाते हैं तब वह रामदूत के रुप में स्वयं का परिचय देते हुए उपरोक्त बात कहते हैं। राम का सामर्थ्य का चित्रण करते हुए हनुमानजी कहते हैं कि हजार हजार ब्रह्म, विष्णु, महेश भी राम विरोधी व्यक्ति का रक्षण नहीं कर सकता। लक्ष्मण रावण के दूत के हाथ जे संदेश भेजते हैं उसी में भी यही बात बताइ गई है –

जाके बल विरंचि हरि ईसा।
पालत सृजत हरत दससीसा।
जाके बल लवलेस तें जितहु चराचर झारि।
तासू दूत मैं जाकर हरि आनहु प्रिय नारी [१]॥
सुनु दसकंढ कहउँ वन रोपी।
शम बिमुख माता नहिं कोपी।
संकर सहस बिष्णु अज तोही।
राखिन सकहिं राम कर द्रोही [२]।
बातन्ह मनहिं रिझाइ सढ जनि घालसि कुल सीस।
राम बिरोध न उबरति सरन बिस्नु अज ईस [३]।

---

१. रामचरित मानस ५/२१

२. उपरीवत् ५/२३

३. उपरीवत् ५/५६

ब्रह्मा, विष्णु और महेश श्री राम की आज्ञा का पालन करनेवाले हैं। इस बात को वशिष्ठ अवध के सभाजनों के सामने प्रकट करते हैं। अगणित ब्रह्मांडों में परिभ्रमण करनेवाले काकभुसुंडि भी इस सत्य की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि अगणित लोकों में उनका पालन करनेवालो विष्णु भी अगणित है और ये सभी विष्णु एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। केवल राम ही एसी परम सतत है जो सचराचर में अभिन्न रूप से दर्शनीय है –

बिधि हरि हस ससि रवि दिसिपाल ।
माया जीव करम कुलि काला ।
अहि च महिप जहँ नगि प्रभुताई ।
जोग सिध्धि निगमागम गाई ।
करि बिचार जीयँ देखहु नीकें ।
राम रजाइ सीस सबहीं कें [१]।

लोक लोभ प्रति भिन्न विधाता ।
भिन्न विष्णु सिव मनु दिसित्राता ।
भिन्न भिन्न तैं दीख सब अति बिचित्र हरिजान ।
अगनित भुरन फिरेउँ प्रभु, राम न देखउँ आना [२]।

१. रामचरित मानस २/२५४

२. उपरीवत् ७/८१

## राम का साम्थ्र्य

तुलसी के अनुसार राम का सामर्थ्य और शक्ति अतुलित है । केवल राम सृष्टि का सृजन करने के करोड़ ब्रह्मा के समान और सृष्टि का पालन करने में करोड़ विष्णु के समान हैं । संहारकार्य में करोड रुद्र के समान होने से ही काकभुसुंडि गरुड से श्री राम की दिव्य शक्ति का वर्णन लाते हुए कहते श्रीराम करोड़ों सरस्वति के समान बुद्धिमान हैं ।

देहत्याग के समय सती को रामने जो वरदान दिया था इसके अनुसार श्री राम शिव और पार्वती के पुनर्विवाह का प्रशताव लेकर भक्त शिव के पास जाकर विवाह करने की आज्ञा देते हैं और शिव उस आज्ञा का पालन करते हुए जो उत्तर देते हैं । इन शब्दों ने भी राम और विष्णु का अंतर स्पष्ट हो जाता है ।

सादर कोटि अमित चतुराई ।
बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई ।
बिनु फोटि सम पालन कर्ता ।
अद्र कोटि सत सम संहर्ता [१]।

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं ।
नाच बचन पुनि मेहि न जाही ।
मात पिता गुर प्रभु कै बानी ।
बिनहि बिचार करिअ सुभ जाती ।
तुम्ह सब भांति परम हितकारी ।
आज्ञा सिरपर नाथ तुम्हारी [२]।

---

१. रामचरित मानस ७/९२

२. उपरीवत् १/७७

समाधिस्थ शिव को जगाकर उनके हृदय में क्षोभ प्रकट करने का काम देवगण कामदेव को सौंपते है ताकि-शिव- पार्वति का विवाह हो सके, परंतु काम अपने उद्यम में असफल रहने के बाद विष्णु और ब्रह्मा को लेकर शिव के सामने आता है वहां सब भिन्न भिन्न रुप से शिव की स्तुति करते हैं तब शिव, प्रसन्न होकर उन सबके आने का कारण पूछते हैं जिनमें विष्णु भी हैं। यहां विष्णु का कोई विशेष स्थान न बताकर सब देवताओं के सहित ही बताये है और सभी देवताओं प्रतिनिधि के रुप में ब्रह्मा उत्तर देते हुए शिव से निवेदन करते हैं -

सब सुर बिष्णु बिरंचि समेता [१]।
गए जहाँ सिव कृपा निकेता ।

कहहु अमर आए केहि हेतू [२]।

सकल सुरन्ह के हृदय अस संकर परम उछाहु ।
निजनयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाहु ।

कामु जारि रति कहुं बरु दीन्हा ।
कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा ।
सासति कहि पुनि करहिं पसाऊ ।
नाथ प्रभुन्ह कहं सहज सुभाऊ ।
पारबती तपु कीन्ह अपारा ।
करहु तासु अब अंगीकारा ।
सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी [३]।
एसेइ होउ कहा सुखु मानी ।

---

१. रामचरित मानस १/८८

२. उपरीवत् ''

३. उपरीवत् ''

यहां इतना विस्तार करने का तात्पर्य एक ही है कि स्वयं विष्णु शिव को विवाह के लिए समझाने में 'नाथ' 'प्रभु' आदि शब्द प्रयोग करके सिद्ध करते हैं कि शिव का स्थान मानों विष्णु से भी ऊँचा है । परंतु साधना में बैठे हुए शिव को राम विवाह के लिए आदेश ही देते हैं और शिव राम को 'प्रभु' शब्द से संबोधन करके उसकी आज्ञा का भंग नहीं होगा । एसा वचन देते है इस प्रकार स्वतः सिद्ध हो जाता है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी राम का स्थान ऊँचा है और राम सबसे समर्थ है ।

**माया का आश्रय लेकर श्री राम का सृष्टि सृजन पालन और संहार कार्य ।**

राम की माया से ही सारे विश्व की उत्पत्ति स्थिति और लय होता है। शिव ने पार्वती के सामने इस तथ्य को प्रकट किया है विश्वामित्र के साथ यज्ञ-रक्षा में जाने हुए राम को भी तुलसी अखिल विश्व का कारण कहते हैं -

उमा राम की भृकुटि बिलासा ।
होइ बिस्व मुनि पावइ नासा [1]।
पुरुष सिंध दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन ।
कृपा सिंधु मति धीर अखिल बिस्व कारण करन [2]।

---

१. रामचरित मानस ६/३५

२. उपरीवत् १/२०८

**श्री राम के विविध अवतार ।**

'मानस' के अनुसार श्री राम ने पूर्व भी अनेक अवतार धारण किये थे और वाराह, नृसिंह, वामन आदि अवतार भी राम के ही थे ।

जनम एक दुइ कहउँ बखानी ।
सावधान सुनि सुमति भवानी ।
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ ।
जय अस विजय जान सब कोऊ ।
बिप्र श्राप तें दूनउ भाई ।
तामस असुर देर तिन्ह पाई ।
कनकसिपु अस हटकलोचन ।
जगत बिदित सुरपति भद मोचन ।
बिजई समर बीर बिख्याता ।
धरि बराह रुप एक निपाता ।
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा ।
जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा ।
भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान ।
कुंभकरन रावन सुभट क्सुर बिजई जग जान ।
मुकुत भए हते भगवाना ।
तीनि जल द्विज बचन प्रभाना ।
एकबार तिन्ह के हित लागी ।
धरेउ सरीस भगत अनुरागी ।
कस्मय अदिति तहां पितु माता ।
दसरथ कौसल्या बिख्याता ।
एक कलप येहि बिधि अकारा ।
चरित पवित्र किए संसारा [1]।

---

१. रामचरित मानस १/१२२

रावण वध के पश्चात् देवगणने जो राम की स्तुति की है इसमें भी स्पष्ट होता है कि यही राम मत्स्य, कच्छप और परशुरामरुप धारण करके पृथ्वी पर प्रकट हुए थे ।

मीन कमठ सूकर नरहरी ।
वामन परसुराम बपु धरी [1]।

**राम के अवतार का हेतु**

बालकांड के शिवाचार्य की संवाद में राम अवतार के हेतु का वर्णन आता है, इनमें कुछ विभिन्न हेतु बताये गये है परंतु इस विषय में अंतीम कथन असंभव है अर्थात् राम अवतार का मूल हेतु क्या है ? इसका उत्तर कोई भी नहीं दे सकता -

हरि अवतार हेतु जेहि होई ।
इदमित्थं कहि जाइ न सोई ।
राम अतर्क्य बुध्धि मन बानी ।
मत हमार अस सुनहि समानी ।
तदपि संत मुनि बेद पुराना ।
जस कछु कहहि स्वमति अनुमाना ।
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही ।
समुझि परइ जस कारन मोहीं [2]।

---

१. रामचरित मानस १/१२१

२. उपरीवत् -----

राम को अवतरित होने के शास्त्रानुसार कुछ कारण है, इनमें से दुष्कर्मियों का नाश और सत्कर्मियों की रक्षा तथा अधर्म का नाश एवं धर्म की स्थापना मुख्य है । यह बात स्वयं शिव कहते हैं । इससे संलग्न बात ही लक्ष्मण निषाद राज से करते है और वाल्मीकि स्तुति करते हुए श्री राम को कहते हैं तथा इसी बात का समर्थन शिव द्वारा भी होता है –

जब जब होइ धरम कै हानी ।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी ।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ।
तब नव प्रभु धरि बिबिध सरीरा ।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा [१]।

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटटि जग जाल [२]।

नर तनु धरेहु संत सुरकाजा ।
करहू करहु बस प्राकृत राजा [३]।

सोई जस गाई भगत भव तरहीं ।
कृपा सिंधु जन हित तनु धरहीं [४]।

---

१. रामचरित मानस १/१२१

२. उपरीवत् २/९३

३. उपरीवत् २/१२७

४. उपरीवत् १/१२२

काकभुसुंडि और गरुड़ के सत्संग में भी उपरिवत् उद्देश्य का ही समर्थन होता है और स्वयं तुलसी भी 'मानस' रचना का हेतु बताते हुए राम अवतार के प्रतिपादन के उद्देश्य को ही बनाते हैं। एक तीसरा उद्देश्य भी मानस में बताया गया है कि प्रभु भक्त के प्रेम और उनकी साधना को सफल करने हेतु सगुण रुप धारण करते हैं।

भगत हेत भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परमा प्राकृत नर अनुरूप [१]।

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई।
तदपि कहें बिनु रहा न कोई।
तहाँ बेद अस कारन राखा।
भवन प्रभाउ भाँति बहु भाषा।
एक अनीह अरुप अनामा।
अज सच्चिदानंद परधामा।
ब्यापक बिस्वरुप भगवाना।
तेहि धरि देर चरित कृत नाना।
सो केवल भगतन्ह हित लागी।
परम कृपाल प्रनत अनुरागी।
बुध बरनहिं हरि जस अस जानी।
करहिं पुनीत सुफल निज बानी [२]।

अगुन अरुप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सो होई [३]।

---

१. रामचरित मानस ७/७२

२. उपरीवत् १/१३

३. उपरीवत् १/११६

सुंदरकांड में राम की शरणों में आया हुआ विभीषण का स्वागत करते हुए स्वयं राम भी इस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं ।

जननी जनक बंधु सुत दारा ।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ।
सब कै ममता ताग बटोरी ।
मम पद मनहिं बांधि बरि डोरी ।
समदरसी इच्छा कछु नाही ।
हरष सोक भय नहिं मन माहीं ।
अस सज्जन मम उर बस कैसे ।
लोभी हृदय बसइ धनु जैसे ।
तुम्ह सरिखे संत प्रिय मोरे ।
धरउ देर नहिं आन निहोरे [१]।

**लक्ष्मण-भरत शत्रुघ्न अंशावतार ।**

राम जब पृथ्वी पर मनुष्यदेह धारण करके पधारे तब अपने अंशों को भी साथ लाये हैं । मनु-सतरुपा तमसे प्रसन्न होकर स्वयं श्री रामने इस बात को स्पष्ट की है -

अब तुम्ह मम अनुसासन मानी ।
बसहु जाई सुरपति रजधानी ।
तहँ करि भोग बिलास तात गए कछु काल पुनि ।
होइहहू अवध मुआल तब मैं हीब तुम्हार सुत ।
असन्ह सहित देह धरि तात ।
करिहउँ चरित भगत सुख दाता [२]।

---

१. रामचरित मानस ५/४८

२. उपरीवत् १/१५१

भूमि पर भार, अधर्म और राक्षसों का त्रास बढ़ने से जब भूमि सहित सभी देवगण प्रभु को अपनी दुःखमुक्ति के लिये प्रार्थना करते हैं तभी भी आकाशवाणी द्वारा भगवानने यही बात बताई है –

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा ।
लेहउँ दिन कर बंस उदारा [1]।

इन बातों से स्पष्ट होता है कि लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न आदि भगवान के अंश है –

**शेषावतार लक्ष्मण**

'तुलसी' के अनुसार लक्ष्मण शेषावतार है और नामकरण के समय भी वशिष्ठ ने सर्वजगत का आधार कह कह लक्ष्मण के शेषत्व को सिद्ध किया है–

बंदउँ लछिमन पद जल जाता ।
सीतल सुभग भगत सुख दाता ।
रुप सहस्त्र सीस जग कारन ।
जो अवतरेउ भूमि भय हारन [2]।

लक्ष्मण धाम राम प्रिय सफल जगत् आधार ।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार [3]।

---

१. रामचरित मानस १/१८७

२. उपरीवत् १/१७

३. उपरीवत् १/१९७

अयोध्याकांड में वाल्मीकि जी राम की स्तुति करते हुए, साथ साथ में अंशावतार लक्ष्मण को भी 'अहीसु' कहके संबोधन करते हैं । तुलसी ने शेष का निवास स्थान क्षीरसागर माना है । और वह क्षीरसागर को छोड़कर प्रभु के साथ वे पृथ्वी पर पधारे हैं । अनंत भी शेष का लक्ष्मण का ही नाम है, मानस में लंकाकांड में कई स्थानों पर लक्ष्मण के स्थान पर अनंत शब्द का प्रयोग हुआ है –

जो सहससीसु अरीसुमहिधरु लखन सचराचर धती [१]।
सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी ।
पय पयोधि तजि अवध बिहाई [२]।
जहँ सिय लखनु राम रहे आई ।
जगदाधार सेष किमि उठै चलै खिसियाई [३]।
रघुपति चरन नाइ सिस चलेउ तुरंत अनंत [४]।
प्रभु कहँ छाँडेसि सूल प्रचंडा ।
सर हति कृत अनंत जुग खंडा [५]।

सुनु सुत सदगुन सफल तब हृदयँ बसहुँ हनुमंत ।
सानुकूल कोसलपति रहहु समेत अनंत [६]।

क्रोधवंत तब भयउ अनंता ।
भंजेउ रथ सारथी तुरंता [७]।

---

१. रामचरित मानस २/१२६
२. उपरीवत् २/१३६
३. उपरीवत् ६/५४
४. उपरीवत् ६/७५
५. उपरीवत् ६/७६
६. उपरीवत् ६/१०७
७. उपरीवत् ६/५४

**शेष–अखिल विश्व का कारण ।**

लक्ष्मण अर्थात् शेष समग्र विश्व के कारण स्वरुप है । संतों की यज्ञा रक्षा के लिए जब राम लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ वन में सिधारते हैं तुब दुष्टनाशक और धर्मस्थापक राम–लक्ष्मण का परिचय देते हुए तुलसी उन्हें अखिल विश्व के करन कारण स्वरुप में बताते हैं । और इस प्रकार 'करन' होने से वे उपादान कारण भी हैं । लक्ष्मण, त्रिभुवन को धारण करनेवाले भी हैं । सनकादिने रामस्तुति करत हुए लक्ष्मण को 'अनंत' और 'भूधर' करके प्रशंसा की हैं ।

पुरुषसिंध दोउवीर हरषि चले मुनि भय हरन ।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन [1]।

सेष सहस्त्रसीस जगकारन ।
जो अवतरेउ भूमि मय हारन [2]।

ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी ।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभूवन धती [3]।

जय भगवंत नंत अनामय ।
अनघ अनेक एककरुनामय ।
जय इंदिरारमन जय भूधर ।
अनुपम अज अनादि सोभाकर [4]।

---

१. रामचरित मानस १/२०८

२. उपरीवत् १/१७

३. उपरीवत् ६/८३

४. उपरीवत् ७/३४

**ब्रह्म लक्ष्मण**

राम की भांति लक्ष्मण में भी ब्रह्मत्व हैं और वह स्वाभाविक हैं, क्योंकि आगे हमने देख लिया कि वे राम के ही अंशावतार है। लक्ष्मण के अपरिवर्तनशील रुप का प्रतिपादन बालकांड में सती की ब्रह्मराम के प्रति शंका के प्रसंग में होता हैं। राम की परीक्षा हेतु आई हुइ सती जब प्रभु की माया देखती हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेशके अनेक रुप इन्हें दिखाई पडते हैं परंतु लक्ष्मण का दर्शन इन्हें एक ओर मूल स्वरुप में ही होता हैं। इस प्रकार इस प्रसंग में विष्णु से भी लक्ष्मण का स्थान उच्च सिद्ध होता है।

देखे सिख बिधि बिष्णु अनेका ।
अमित प्रभाउ एक ते एका ।
बंदत चरन करत प्रभु सेवा ।
बिबिध बेष देखे सब दवा ।
पूजहिं प्रभुहि देव बहु वेषा ।
राम रुप दूसर नहिं देखा ।
अवलोके रघुपति बहुतेरे ।
सीता सहित न बेष धने रे ।
सोइ रघुबीर सोइ लछिमनु सीता ।
देखि सती अति भई सभीता [१]।

---

१. रामचरित मानस ५४/५५

परंतु मानस के ही एक दूसरे प्रसंग में लक्ष्मण को परिवर्तनशील माना गया हैं परंतु तुलसी की स्वयं की आगे की बात का स्वयं के द्वारा ही खंडन होता हुआ मालुम पडता हैं । उत्तरकांड में कागभुसुंडि और गरूड़ के संवाद में कागभुसुंडि गरूड़ से कहते हैं कि मैं भिन्न भिन्न लोकों में घुमा और रुद्र दिखाई दिये । मैंने अवधपुरी और सरजू तथा भरतादिक भ्राताओं के भी भिन्न स्वरुप देखे पंरतु एकमात्र राम के अपरिवर्तनशील देखे ।

लोक लोक प्रति भिन्न विधाता ।
भिन्न विष्णु सिव मनु दिसि त्राता ।
अवधपुरी प्रति भुवन निहारी ।
सरजू भिन्न भिन्न नरनारी ।
दसरथ कौसल्या सुनु ताता ।
बिबिधरुप भरतादिक भ्राता ।
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा ।
देखेउ बाल बिनोद उदारा ।

भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति बिचित्र हरिजान ।
अगनित भुवन फिरेउ प्रभु राम न देखेउँ आन [१]।

---

१. रामचरित मानस ७/८१

**विश्व का पोषण भरत**

भरत राम के अंशावतार हैं इस बात को हमने आगे देख लिया, परंतु जिस प्रकार लक्ष्मण विश्व को धारण करनेवाला हैं उसी प्रकार भरत विश्व का भरण-पोषण करनेवाले हैं। वसिष्ठ मुनि नामकरण करते हुए इस बात की स्पष्टता करते हैं।

बिस्व भरत पोषन कर जोई [१]।
ताकर नाम भरत अस होई ।

**शत्रुसूदन शत्रुघ्न**

शत्रुघ्न शत्रुओं का नाश करनेवाले है - यह बात भी नामकरण प्रसंग में ही वसिष्ठ द्वारा स्पष्ट होती है।

जाके सुमिरन ते रिपु नासा [२]।
नाम शत्रुघ्न बेद प्रकासा ।

**वानरादि का देवत्व**

प्रभु से जब वर मिलता है कि वे स्वयं आकर धरती का भार उतारेंगे तब ब्रह्म देवताओं को वानर देह धारण करके पृथ्वि पर अवतिर्ण होने की आज्ञा देते हैं और सभी देव वानरदेह धारण करके प्रभुलीला में सहायता करने को पृथ्वी पर आते हैं।

---

१. रामचरित मानस १/१९७

२. उपरीवत् ''

'मानस' के अनुसार वानरादि देवता के अंश है। राम-रावण युध्ध के बाद राम इन्द्र को सुधावृष्टि करने का आदेश देते हैं और देवांश वानरादि इन्द्र द्वारा की गई अमृतवृष्टि से पुनर्जिवित हो जाते हैं।

निज लोकहिं बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि-महि हरिपद सेवहू जाइ।

गए देव सब निज निज धामा।
भूमि सहित मन कहुँ विश्रामा।
जो छु आयसु ब्रह्म दीन्हा।
हरषे देव बिलंब न कीन्हा।
बनचर देह धरी छिति माहीं।
अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं।
गिरितस नख आयुध सब वीरा।
हरि मारग चितहिं मतिधीरा [१]।

सुधा वृष्टि भैदुहु दल उपर
जिए भालु कपि नहिं रजनीचर।
सुर असिक कपि सब अरु रीछा।
जिए सफल रघुपति की इच्छा [२]।

---

१. रामचरित मानस १/१८७-१८९

२. उपरीवत् ६/११४

**वानरादि की सगुण ब्रह्मोपासना**

'मानस' के मत से वानरादि भगवान के सगुण रूप के उपासक है। जब निर्गुण ब्रह्म सगुण होकर पृथ्वी पर अवतरित होते हैं तब उनकी विविध लीला का दर्शनलाभ पाने के लिये उनके उपासक भी प्रभु के साथ साथ पृथ्वी पर आते हैं। सीता खोज प्रसंग में जामवंत और अंगद के संवाद में इस बात का रहस्योद्घाटन होता हैं।

तात राम कहुँ नर जनि जानहु ।
निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ।
हम सब सेवक अति बड़ भागी ।
संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी ।
निज इच्छाँ अवतरइ प्रभु सुर महि गो द्विज लागि ।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि [१]।

**सीता**

मानस की तत्वदृष्टि से सीता आद्यशक्ति हैं। जो शक्ति से ही ये सारे विश्व की उत्पत्ति होती हैं। ये सारे विश्व की उत्पत्ति होती हैं। रामने इस आद्यशक्ति के साथ ही मनु शतरुपा को दर्शन दिया था।

बाम भाग सोभति अनुकूला ।
आदिसक्ति छबिनिधि जग मूला ।
भृकुटि बिलास जग सोई ।
राम बाम दिसि सिता सोई [२]।

---

१. रामचरित मानस ४/२६

२. उपरीवत् १/१४८

स्वयं रामने ही मनु शतरुपा को सीता का आद्यशक्ति के रुप में परिचय कराया था । मानस के प्रारंभ के चतुर्थ श्लोक में भी (बालकांड मंगलाचरण में) तुलसीने सीता का परिचय जगत् की उत्पत्ति स्थिति और पालन करनेवाली शक्ति के रुप में ही कराया हैं ।

आदि सक्ति जेहिं जग उपजाया ।
सोउं अवतरहिहि मोरि यह माया [1]।

उद्‌भव स्थिति संहारकारिळीं ।
क्लेशहारिकीं ।
सर्वश्रेय स्करीं सीतां ।
नतोऽहं रामवल्लभाम् ।[2]

**योगमाया सीता**

सीता प्रभु की योगमाया हैं । ब्रह्म राम और योगमाया सीता 'मानस' के मत से गिरा–अर्थ अथवा जल–वीछी की भांति परस्पर जुडे हुए हैं । अर्थात् जैसे वाणी और अर्थ को जैसे हम अलग अलग नहीं कर सकते, एक साथ ही समझना पडता हैं । इसी तरह भगवान नारायण और माया भी परस्पर जुडे हुए हैं ।

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।
बदउँ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न [3]।

---

१. रामचरित मानस १/१५२

२. उपरीवत् १/१ (प्रारंभ)

३. उपरीवत् १/११८

देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न होकर परम ब्रह्म अविनाशी शक्ति के साथ पृथ्वी पर आने का वचन दिया हैं ।

नारद बचन सत्य सब करिहउँ ।
परम सक्ति समेत अवतरिहउँ [१]।

रामराज्याभिषेक के समय पधारे हुए वेद प्रभु की स्तुति करते हुए नारायण प्रभु को उनकी शक्ति के साथ वंदन करते हैं ।

अवतार नर संसार भार बिभंजि दारून दुख वहे ।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे [२]।

**मूल प्रकृति – सीता**

श्रीराम विश्व की आत्मा का स्वरूप हैं और सीता मूल प्रकृति स्वरुपा हैं । इस जगत् को तत्वज्ञान से समझे तो जगत् विविध रूप से आत्मा और प्रखृति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं और इसलिये वंदना प्रकरण में तुलसी ने समस्त जगत को सीताराम से व्यापी माना हैं ।

सीय राम मम सब जग जानी ।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी [३]।

**लक्ष्मी स्वरुपा सीता**

आगे हमने राम विष्णु का अवतार है एसा देखा । इस संदर्भ में 'मानस' के अनुसार सीता लक्ष्मी हैं । तुलसी कहते हैं कि मिथिलानगरी की संपत्ति और समृद्धि की प्रशंसा करने में स्वयं सरस्वति को भी क्षोभ होता है क्योंकि यहां स्वयं लक्ष्मी मायाशक्ति से सीता का स्वरुप धारण करके बस रही हैं । वहां की संपत्ति भला कैसे बखानी जायेगी ।

बसइ नगर जेहिं लच्छि करि कपट नारी बर जोहु ।
तेहि पुर कैसोभा कटत सकुचहिं सारद सेषु [४]।।

---

१. रामचरित मानस १/१८७, २. ७/१३, ३. १/८, ४. १/२८९

लक्ष्मी सीता का निवास स्थान क्षीरसागर बताया हैं और मानस में अनेक स्थानों पर 'रमा' को सीता के पर्यायवाची रुप में रखा गया हैं ।

पय पयोधि तजि अवध बिहाई ।
जहँ सिय लखनु राम रहे आई [१]।

राम जाम दिसि सोभति रमा रुप गुन खानि ।[२]

**सीता का लक्ष्मी से भिन्नत्व**

मानस में राम के लिए जहां जहां रमानिवास, इंदिरापति, रमारमन, रमेश आदि शब्द प्रयोग हैं, उन सभी स्थानों पर तो सीता का लक्ष्मीत्व स्वतः सिद्ध हो जाता हैं परंतु मानस के कई प्रसंगो में सीता को लक्ष्मी से भिन्न बताया गया हैं । जैसे कि सीता-राम के विवाह प्रसंग विष्णु और लक्ष्मी का सीताराम का रुप देखकर मुग्धहो जाना राम विवाह प्रसंग को देखने के लिये लक्ष्मी का कपटी नारी रुप धारण करके रानीवास की स्त्रीयों के साथ मिल जाना आदि।

हरि हिय सहित राम जब जोहे ।
रमा समेत रमापति मोहे [३]।

सची सारदा रमा भवानी ।
कपट नारी बर बेष बनाई [४]।

---

१. रामचरित मानस १/१३९

२. उपरीवत् ७/११

३. उपरीवत् १/३१७

४. उपरीवत् १/३१९

मानस के बालकांड में राम की भांति सीता को भी अपरिवर्तनशील बताया गया हैं । यहां सीता लक्ष्मी से भी श्रेष्ठ सिध्ध होती हैं । सती शंका प्रसंग में ब्रह्म की परीक्षा हेतु गई हुई सती को जब ब्रह्म की माया का दर्शन होता हैं । जिसमें अनेक ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नगर, नदियाँ आदि के साथ साथ अनेक लक्ष्मी का भी दर्शन होता हैं, परंतु राम और लक्ष्मण की भांति सीता का अपरिवर्तनशील रूप दृष्टिगोचर होता हैं ।

मनु-सतरुपा के तप से प्रसन्न होकर जब सीता-राम प्रकट होते हैं तब सीता के सामर्थ्य के विषय में तुलसी कहते हैं कि इसमें अंश मात्र से अनेक लक्ष्मी उमा एवं ब्रह्माणी उत्पन्न हो सकती है । और लक्ष्मी ब्रह्माणी आदि द्वारा सीता वंदन भी है ।

सती विधात्री इंदिरा देखी अमित अनूप ।
जेहिं जेहि बेष अजादि सुर तेहि तेहि तनु अनुरुप ।
सोइ रघुपति सोई लछमनु सीता ।
देखि सती अति भई सभीता [१]।

जासु अंस उपजहिं गुनखानी ।
अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी [२]।

उमा रमा ब्रह्मानि वंदिता ।
जगदंबा संततमनिदिंता [३]।

---

१. रामचरित मानस १/५४-५५

२. उपरीवत् १/१४८

३. उपरीवत् १/१८६

**मायास्वरुपी सीता**

राम परमात्मा हैं और सीता माया स्वरुपा हैं जो माया त्रीगुणात्मक हैं और इन गुणों का आश्रय करके सृष्टि की रचना करती हैं ।

एक रचई जग गुन बस जाके ।[1]

**माया काय कार्य**

माया समस्त जगत् को रचना करनेवाली धारण (स्थिति) करनेवाली और संहारकारिणी है । संसार की उत्पत्ति यह आद्यशक्ति के कारण ही होती है । इस बात को तुलसी ने मानस में कई स्थानों पर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है ।

लवनिमेष महुँ भुवन निकाया ।
साइ जासु अनुसासन माया [2]।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई ।
सो सब माया जानहुं भाई [3]।

सुनु रावण ब्रह्मांड निकाया ।
थाई जासु बल बिरचति माया [4]।

गंगन समीर अनल जल धरनी ।
इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी ।
तब प्रेरित माया उपजाए ।
सृष्टि हेतु सब ग्रंथन्हि गाए [5]।

---

१. रामचरित मानस ३/१५
२. उपरीवत् १/२२५
३. उपरीवत् ३/१५
४. उपरीवत् ५/२१
५. उपरीवत् ५/५९

**अखिल ब्रह्माण्ड मायावश है**

सारा विश्व, ब्रह्मादि देव और जीवप्राणी मात्र माया के वश है । माया ने सचराचर सभी को अपने वश में कर रखा है ।

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं
ब्रह्मादि देवासुरा.... ।[1]
जीव चराचर बस कै राखे ।
जेहि बस कीन्हें जीव नीकाया ।[2]

**ब्रह्म के बल से माया की क्रियाशीलता**

माया अकेली कुछ भी नहीं कर सकती, वह तो निर्बल और जड़ है परंतु ब्रह्म राम से बल प्राप्त करके वह ब्रह्मांड की रचना कर पाती है ।

एक रचइ जग गुन बस जाकें ।
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें [3]।

सुनु रावण ब्रह्मांड निकाया ।
भाई जासु बल बिरचति माया [4]।

---

१. रामचरित मानस १/आरंभ

२. उपरीवत् १/२००

३. उपरीवत् ३/१५

४. उपरीवत् ५/२१

## ब्रह्म के बल से जड़माया का सत्य भासना

ईश्वर का आश्रय करके जड़ माया सत्य भासती हैं और राम का सामर्थ्य इस जड़ माया को भी चेतना स्वरुप सामर्थ्य इस जड़ माया को भी चेतना स्वरुप बनाकर इनके पास विविध कार्य कराते हैं । माया के बल से सत्य मिथ्या और मिथ्या सत्य लगता हैं । माया की शक्ति भ्रमकारिणी और तीनो काल में वृथा हैं ।

जासु सत्यता तें जड़ माया ।
भास सत्य इव मोह सहाया [१]।

जगत प्रकास्य प्रकासक राम् ।
मायाधीस ज्ञान गुन धाम् [२]।

यत्सत्वादमृषैव भांति सकलंरज्ञौ यथाहर्भ्रमः ।[३]

रजन सीप महुँ भास जिमि जथा भानूकर बारि ।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोई भ्रम न सफइकोउ हारी ।
येहि बिधि जग हरि आश्रित रहई ।
जदपि असत्य देन दुख अहई [४]।

---

१. रामचरित मानस १/११७

२. उपरीवत् ''

३. उपरीवत् १/१ (आरंभ)

४. उपरीवत् १/११८

## माया पर राम का आधिपत्य

माया राम की दासी हैं। रामके लिये मानस में 'मायाधीश', 'मायापति' आदि शब्द प्रयोग हैं अर्थात् माया श्री राम की आज्ञाकारिणी है। माया अपने स्वामी से डरती हैं। इस बात का प्रमाण बालकांड में मिलता हैं जब प्रभु श्री राम माता कौशल्या को अपना अद्‌भुत स्वरूप का दर्शन कराते हैं तब कौशल्या को माया राम से भयभीत नज़र आती हैं। माया सचराचर जीव को अपने वश में करनेवाली है परंतु राम के इशारे मात्र से नाचनेवाली हैं।

सो दासी रघुबीर कै सुझें मिथ्या सोऽपि ।[1]

मायाधीस ग्यान गुन धाम् ।[2]

जीब चराचर बस कें राखे ।
सो माया प्रभु सो भय भाखें ।
देखी माया सब बिधि गाढ़ी ।
अति सभीत जोर कर ठाढ़ी [3]।

सो माया सब जगहि नचावा ।
जासु चरित लखि काहु न पावा [4]।

सोईं प्रभु भ्रूबिलास खगराजा ।
नाच नहीं इव सहित समाजा [5]।

---

१. रामचरित मानस ७/७१

२. उपरीवत् १/११७

३. उपरीवत् १/२०२

४. उपरीवत् ७/७२

५. उपरीवत् ''

## जगत्

राम की प्रेरणा से माया द्वारा पंचमहाभूत अर्थात् अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश यह स्थूल भूतों की उत्पत्ति होती हैं और फिर इस स्थूल पंचमहाभूत में से ही समस्त स्थावर जंगम् जगत की उत्पत्ति होती हैं। सुंदरकांड में महासागर और राम के संवाद में इस तथ्य का वर्णन किया गया हैं।

गगन समीर अनल जल धरती ।
इन्ह कै नाथ सहज जड़ करनी ।
तब प्रेरित माया उपजाए ।
सृष्टि हेतु सब ग्रंथन्हि गाए [१]।

इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषय और मन आदि समस्त माया से उत्पन्न हुए हैं और माया के वश हैं।

गो गोचर जहं लगि मन जाई ।
सो सब माया जानहु भाई [२]।

---

१. रामचरित मानस ५/५९

२. उपरीवत् ३/१५

## विश्वरुप विराट्

मानस के मत से समग्र विश्व प्रभु का विराट् स्वरुप है । लंका कांड में राम के विश्वरुप का वर्णन करती हुई मंदोदरी रावण को समझा भी रही है और प्रभु में विराट् स्वरुप का प्रतिपादन भी कर रही है –

पद पाताल सीस अजधामा ।
ऊपर लोक अँग अँग बिश्रामा ।
भृकुटि बिलास भयंकर काला ।
नयन दिवाकर कच घनमाला ।
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा ।
निसि अस दिवस निमेष अपारा ।
स्त्रवन दिसा दस बेदु बखानी ।
मारुत स्वास निगम निज बानी ।
अधर लोभ जप दसन कराला ।
माया हास बाहु दिगपाला ।
आनन अनल अंबुपति जीहा ।
उत्पत्ति पालन प्रलय समीहा ।
रोमराजि अष्टादस भारा ।
अस्थि सैल सरिता नस जारा ।
उदर उदधि अध गो जातना ।
जगमय प्रभु की बहु कल्पना ।
अहंकार सिव बुध्धि अज मन ससिचित्त महान ।
मनुज बास सरचाचर सिंप राम भगवान [1]।

---

१. रामचरित मानस ६/१५

**मायाजनित जग्तवृथा और केवल राम सत्य**

सारा संसार मायाजनित हैं, हमने आगे देख लिया कि माया वृथा और जड़ हैं । स्वाभाविक हैं कि वृथा से उत्पन्न हुई वस्तु भी वृथा ही होगी । अर्थात् जगत् मिथ्या हैं, केवल राम के सत्यबल के कारण वह सत्य सी प्रतीत होती हैं ।

यत्सत्वादमृषैव भाति सफलं रज्जौयथाहेर्भ्रमः ।[१]

जासु सत्यता तें जड़ माया ।

भास सत्य इव मोह सहाया [२]।

**जगत् स्वप्नवत्**

जगत् स्वप्नवत् हैं । स्वप्न में जीव अनेक प्रकार के सुख दुःखों को भुगतता हैं वैसे ही जगत् में, परंतु मायावश जीव को जगत् सत्य भासता हैं और भ्रमवश वह नाना प्रकार के कर्म करते रहता हैं । और सुख दुःख के फंदे में भी फँसता हैं ।

---

१. रामचरित मानस १/१

२. उपरीवत् १/११७

मोह और अज्ञान वश जीव संसार में भटक रहा हैं । स्वप्न में से जो जाग जाता हैं वह मिथ्या सुख दुःख से जैसे मुक्त हो जाता हैं, वैसे ही मोटरुपी अंधकार से जो जागृत हो जाता हैं उन्हें माया परेशान नहीं कर सकती । परंतु केवल हरिभजन को सत्य मानकर उसका आश्रय लेनेवाला ही यह स्वप्नवत् जगत को मिथ्या मान सकता हैं ।

येहि बिध जन हरि आश्रित रहई ।
जदपि असत्य देत दुख अहई ।
ज्यौं सपने सिर काहैं कोई ।
बिनु जागें न दूरि दुख होई ।
जासु कृपाँ अस भ्रम मिहि जाई ।
गिरिजा सोई कृपाल रघुराई ।
जोग वियोग भोग थल फंदा ।
हित अनहित मध्यम भ्रमकंदा ।
जनमु मरन जहँ लगि जग जामू ।
संपति बिपति करमु अस कालू ।
धरनि धातु धनु पुइ परिवारु ।
सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारु ।
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं ।
मोह मूल परमारथु नाहीं [१]।

सपने होइ भिखारी नृपु रंक नाकपति होइ ।
जागें हानि न लाभु कछु अस प्रपंच जियँ जोइ ॥

मोह निसाँ सब सोवनिहारा ।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा [२]।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना ।
सत हरिभजन जगत सब सपना [३]।

---

१. रामचरित मानस १/११८
२. उपरीवत् २/९३ ३. ३/३९

## जीव

'मानस' के अनुसार जिन्हें माया, इश्वर तथा स्वयं के विषय में भी स्वरुप का यथार्थ ज्ञान नहीं है जिन्हें जीव कहा हैं । जीव द्वंद्व के वश हैं ।

माया ईन आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव ।[1]

## जीव का स्वभाव

हर्ष बिषाद, ज्ञान, अज्ञान, अहंकार आदि द्वन्द्व में फँस जाना जीव का स्वभाव है अथवा धर्म है । ब्रह्मादि जैसे समर्थ भी अन्य जीवों की तराह ब्रह्म पदार्थो में सत्यबुद्धि रखते हैं और इस द्वंद्वभाव में से छूटने के लिये प्रभु से प्रार्थना करते हैं । स्वयं शिव भी सुख दुःख और रागद्वेषादि से युक्त होने की याचना राम के चरणों में करते हैं ।

हर्ष बिषाद ग्यान अग्याना ।
जीव धरम अहमिति अभिमाना [2]।

अब दिन दयाल दया करिए ।
मति मोरि विभेदकरी हरिए ।

जेहि ते बिपरीत क्रिया करिए ।
दुःख सो सुख मानि सुखी चरिए [3]।

रघुनंद निकंदन द्वन्द्व घनं ।
महि पाल बिलोक्य दीन जनं [4]।

---

१. रामचरित मानस ३/१५

२. उपरीवत् १/११६

३. उपरीवत् ६/१११

४. उपरीवत् ७/१४

### ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जीव की कक्षा में

जगत् के जीवों में मानस के अनुसार ब्रह्मा विष्णु और महेश का भी समावेश हो जाता है । और वे भी सामान्य जीव की भांति ही माया वश हो जाते हैं । तुलसी के अनुसार ब्रह्मा विष्णु भी श्री राम के चित और आनंद स्वरुप को जानने में असमर्थ है –

सिव बिरंचि कहुँ तोहहिं कोहै बपुरा आन ।
अस जिर्यं जानि भजहिं मुनि मायापति भगवान [1]॥

जग देखन तुम्ह देखनिहारे ।
बिधि हरि संभु नचावनि हारे ।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा ।
और तुम्हहिं को जाननिहारा ।
चिदानंदमय देह तुम्हारी ।
बिगत बिकार जान अधिकारी [2]।

### जीव का अक्षरत्व

मानस के अनुसार जीव पंचमहाभूत देह से भिन्न है वह नित्य और जन्म-मरण से भी मुक्त है । किष्किंधा कांड में वाल्मीकि के मृत्यु से शोक करती हुई तारा को प्रभु राम जीव की नित्यता और देह की नश्वरता अच्छी तराह से समझाते हैं –

छिति जल पावक गगन समीरा ।
पंचरचित यह अधम सरीरा ।
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा ।
जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा [3]।

---

१. रामचरित मानस ७/६२
२. उपरीवत् २/१२७
३. उपरीवत् ४/११

**जीव और ईश्वर में अभेद्य**

ईश्वर और जीव में वस्तुतः कोई भेद नहीं है । परंतु जो जो भेद ज्ञात होता है ये है सिर्फ ज्ञान और अज्ञान का । जीव को अपने एकरस, अखंड और अजन्मा स्वरुप का ज्ञान हो जाय तो फिर जीव और ईश्वर में कोई भेद नहीं रहता –

ग्यान अखंड एक सीताबर ।
माया बस्य जीव सचराचर ।
जौं सब के रह ग्यान एक रस ।
ईश्वर जीहविंह भेद कहहु करु [1]।

**आत्मानुभूति से भ्रमनिवारण ।**

जीव और ईश्वर का भिन्न होना वह हमारा भ्रम मात्र है । और यह भ्रम माया के कारण है परंतु आत्मानुभूति से सभी प्रकार के भेद और भ्रम नष्ट हो जाते हैं । आत्मानुभूति से जीव की कक्षा ही बदल जाती है । और इसलिये जिस संत को आत्म अनुभव हुआ है, इनके लिये तुलसी 'अनंत' की उपमा देते हैं –

मुधा भेद जद्यपिकृत माया [2]।

आत्म अनुभव सुख सुप्रकासा ।
तब भव मूल भेद भ्रम नासा [3]।

जानेसु संत अनंत समाना [4]।

---

१. रामचरित मानस ७/७८

२. उपरीवत् ''

३. उपरीवत् ७/११८

४. उपरीवत् ७/१०९

**मायावश जीव**

जीव माया के वश होकर अज्ञान में पड़ा है । और माया से ही प्रेरित होकर अज्ञानवश काल, कर्म और विविध गुणों में लगा हुआ भव चक्र (विविध योनियाँ) में भटकता है –

नाथ जीव तब मायाँ मोहा ।[1]

तव विषममाया थस सुरासुर नागनर आग जग हरे [2]।
भव्यांथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे ।

**जीव की गतियाँ कर्मानुसार**

माया वश जीव विविध प्रकार के कर्म करता है और फिर कर्म के अनुसार जीव की विविध गतियाँ होती हैं –

काहून कोउ दुःख सुख कर दाता[3]
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ।

करम प्रधान बिस्व कर राखा [4]।
जो जस करइ सो मस फल चाखा ।

**विद्या और अविद्या**

राम की माया के दो स्वरुप है (१) विद्या (२) अविद्या ।

तेहि करि भेद सुनहु तुम्ह सोऊ ।
विद्या अपर अविद्या दोऊ [5]।

---

१. रामचरित मानस ४/३

२. उपरीवत् ७/१३

३. उपरीवत् २/६२

४. उपरीवत् २/२१९

५. उपरीवत् ३/१५

विनाशी अथवा नाशवंत अथवा अनात्म में आत्मभाव भ्रमवश हो जाना ही अविद्या है । अविद्या संसार का कारण है और विद्या जीव को संसार चक्र से मुक्त करानेवाली है । अतिशय प्रवृत्तिमार्ग गामी अविद्या से वश होकर भटकते रहते हैं और निवृत्तिमार्गी 'विद्या' के कारण मुक्त हो जाते हैं। मानस में काकभुसुंडि स्वानुभव दारा माया को प्राबल्य बनाते हुए कहते हैं –

सो माया न दु:खद मोहि काहीं ।
आन जीव इव संसृति नाहीं ।
नाय इहाँ कथु कारन आना ।
सुनहु सो सावधान हरिजाना ।
हरि सेवकहि न ब्याप अविद्या ।
प्रभु प्रेरित ब्यापही तेहि विद्या ।
ताते नास न होइ दास कर ।
भेद भगति बाढइ बिहंग कर [१]।

लक्ष्मणजी अरण्यकांड में माया के स्वरुप को अनुक्रम से (अविद्या) आवरण विक्षेप कहकर दोनों का काम बताते हैं । आवरणशक्ति मनुष्य के संपूर्ण ज्ञान को आवृत्त कर रखती है और परिणामत: जीव मोहांध ही रहता है । और विक्षेप शक्ति विश्व की कल्पना करनी है –

एक दुष्ट अतिसय दुखरुपा ।

जा बस जीव पराभव कूपा ।

एक रचइ जग गुन बस जाकें ।

प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके [२]।

---

१. रामचरित मानस ७/७८-७९

२. उपरीवत् ३/१५

**ब्रह्मज्ञान से भेद, भ्रम और आवागमन का अंत**

जीव को जब ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् वह अपने और ब्रह्म के बीच में कोई भेद नहीं एसी ज्ञानदृष्टि पा लेता है तो फिर भेद, मायाजनित भ्रम और भेदभ्रम के कारण जो संसार चक्र में आवागमन (बार बार जन्म मृत्यु) ये सब स्वतः मिट जाता है –

आनम अनुभव सुख सुप्रकासा [१]।
तब भवमूल भेद भ्रम नासा ।

**ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति से जीव की ब्रह्ममयता**

ब्रह्मज्ञान का जब अनुभव होने लगता है तब जीव जीव न रवहकर स्वतः ब्रह्म हो जाता है –

जानत तुम्हहि तुम्हइ होई जाई ।[२]

**बोधज्ञान**

जगत के अनात्म वस्तुओं को यथार्थ रूप में जानना, समझना इसमें आत्मभाव न रखना और अपने नित्य-शुद्ध-बुद्ध-सत्-चिदानंद स्वरूप को ज्ञात करने को बोधज्ञान कहते हैं । सारे जीव मोहरात्रिरुपी संसार में निद्राधीन है अर्थात् अजाग्रत अवस्था में है । इस मोहरात्रि से केवल वही जाग सकते हैं जो परमार्थ के मार्ग में उद्यमी और अनात्म जगत् से निवृत्त –

येहि जग जामिनि जागहिं जोगी ।
परमारथी प्रपंच बियोगी [३]।

---

१. रामचरित मानस ७/११८

२. उपरीवत् २/१२७

३. उपरीवत् २/९३

जीव को जब सभी प्रकार के विषय वासना से विरक्त हो जाय तब समझना कि जीव मोहसुषुप्ति में से अब जाग गया है –

जानिअ तबहिं जीव जग जागा ।
जब सब बिषय बिलास बिरागा [1]।

**परमार्थ**

परमार्थ संसार चक्र और उनके दुःखो से मुक्ति पाने का एक मात्र मार्ग है । अर्थात् मायामय विषयों का त्याग और परलोक सुधारने के जीतने भी साधन है वे सब परमार्थ के अंतर्गत आता है –

तजि माया सेइअ परलोका ।
मिटहिं सकल भवसंभव सोका [2]।

**मनुष्य देह की दुर्लभता और मनुष्य देह परमार्थ मार्ग के लिये श्रेष्ठ**

संसार की सभी योनियों में मानवदेह सर्वश्रेष्ठ और दुर्लभ है इसके समान दूसरा कोई शरीर नहीं है । मनुष्य देह के द्वारा अपनी मनचाही गति को सरलता से प्राप्त कर सकता है –

तर तनु सम नहिं कचनिउँ देही ।
जीव चराचर जाचता जेही ।
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी ।
ग्यान विराग भगति सुभ देनी [3]।

---

१. रामचरित मानस २/९३

२. उपरीवत् ४/२३

३. उपरीवत् ७/१२१

उपर हमने देखा कि स्वर्ग नर्क और मोक्ष तीनों के प्रति यह देह से गति हो सकती है । अर्थात् मनुष्य देह का उपयोग कैसे करता है इस पर सारी बात निर्भर है परंतु मानवदेह को प्राप्त करके मनुष्य का केवल एक ही ध्येय होना चाहिए – परमार्थ साधन । जो मनुष्य इस देहरुप साधनों का धाम और मोक्ष के द्वार को या लेने पर भी परमार्थ साधन नहीं करता वह अंत में अति दुःखी होता है । इस विषय को स्वयं राम उत्तर कांडमें अवधक प्रवाजनों के सामने प्रचार करते हैं –

बडे भाग मानुष तनु पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ।
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ ।
कालहि कर्महि ईश्वर हि मिथ्या दोरु लगाइ ।
येहि नन कर फल बिषय न भाई । स्वर्गौ स्वल्प अंत दुःखदाई ।
नर तनु पाइ बिषय मन देहीं । पलटि सुधा ते रुढ बिष लेहीं ।
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई । गुज्य ग्रहइ परसमनि खोई ।
आकर चारि लच्छ चौरासी । जोनि भ्रमत यह जीव अबिनासी ।
फिरत सदा माया कर प्रेरा । काल कर्म सुभाव गुम घेरा ।
कबहुँक करि करुना नरदेही । देत ईस बिनु हेतु सनेही ।
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो । सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ।
करन धार सद्गुरु दृढ नावा । दुर्लभ साज सुलभ फरि पावा ।
जो न तरै भव सागर समाज अस पाइ ।
सो कृत निंदक मंदमति आतमहन गति जाई ॥

---

१. रामचरित मानस ७/४३-४४